Introduction

:: प्राक्कथन ::

साहित्य का अध्ययन एक आनंद की , एक सात्विक आनंद की वस्तु है । लोग तप, तीर्थ, पूजा, स्मरण आदि में ईश्वर को ढूंढते हैं, साहित्यकार उसे अपनी साहित्य-साधना द्वारा प्राप्त करते हैं । यह उनका मार्ग है और बड़ा ही सुंदर मार्ग है । यहां डूबना है और डूबकर ही तैर जाना है । यह "तरना" केवल साहित्यकार तक ही सीमित नहीं रहता , वह समाज, जाति और देश की परिसीमा को भी छूता है और उसी में उसकी सार्थकता है । अतः साहित्य का अनुशीलन और अध्ययन भी एक साधना है , इस दृष्टि से देखा जाय तो अनुसंधित्सु का कार्य एक साधक का ही कार्य है । साहित्य की अनेक विधाओं में उपन्यास भी एक है , और अपेक्षाकृत आधुनिक विधा है , जीवन और जगत से अधिक निकटता से जुड़ी हुई ।

साहित्य की तीन विधाएं पहले से चली आ रही हैं :- कविता, नाटक और कथा । यद्यपि इन तीनों विधाओं में कुछ तत्त्व समान रूपसे विद्यमान हैं, तथापि उनका पार्थक्य इतना प्रकट और स्पष्ट रहा है कि उनकी अलग पहचान में कोई दिक्कत नहीं आती । काव्य की अनेक विशेषताओं में एक यह भी है कि उसका माध्यम श्रव्य माध्यम है । कविता पढ़ते समय भी सुनने की ही वस्तु है । अतः उसमें संगीत, छंद, लय, आरोह-अवरोह, गीत आदि अपेक्षित हैं । इस प्रकार नाटक स्पष्ट ही दृश्य-माध्यम है । उसकी रचना में मंचीय उपकरण तथा अभिनय अनिवार्य है । कविता सुनने की वस्तु है तो नाटक देखने की । अतः ये दोनों अन्य अनेक कलाओं का आश्रय ग्रहण करने के कारण मिश्र माध्यम हैं । इस दृष्टि से देखा जाय तो कथा विशुद्ध साहित्यिक माध्यम है , जो केवल शब्द पर आधारित है । परन्तु शब्दार्थ पर आधारित होते हुए भी कथा बहुत दिनों तक काव्य की ही भांति एक मौखिक विधा रही है । नानी की कहानी और लोक -कथाओं में उसका वह चिर-प्रचलित मौखिक रूप आज भी विद्यमान है । घटनाओं के घटाटोप से युक्त कथानक तथा ~~कथानक~~xx भाषागत कौशल व प्रसाद से वह मानव के चित्त-कौतूहल का

परितोष करती रही है । कविता में मानवीय भावों का जो सूक्ष्म और गंभीर चित्रण मिलता है , उसका यहाँ अभाव-सा रहा । फलतः साहित्य के कृती-कवियों ने जहाँ काव्य से भावों के उत्कर्ष का काम लिया , वहाँ कथा से विशुद्ध मनोरंजन का । अधिक से अधिक उसमें " कान्तासम्मित उपदेश " की ही व्यवस्था हो सकी । वैदिक उपाख्यानों से लेकर पौराणिक आख्यानों , जातक कथाओं तथा "पंचतंत्र" , हितोपदेश " और क " कादंबरी " तक के कथा-साहित्य में लोकरंजन और लोकोपदेश की प्रवृत्ति ही उसकी मुख्य प्रवृत्ति रही है । परंतु वर्तमान कथा-साहित्य का एक रूप उपन्यास इससे भिन्न पड़ता है । मानवीय भावों और स्थिति की सूक्ष्म अभिव्यंजना के कारण वह मानव-जीवन की सर्वाधिक समीपस्थ हो गया है । लोकरंजनी चमत्कार यहाँ नहीं है । पुराने मिथकों की बौद्धिक व्याख्या यहाँ है । यथार्थधर्मिता उसका प्राण है । वह मानव-चरित्र का चित्र है और मानव-चरित्र के जटिल रहस्यों का उद्घाटन ही उसका उद्देश्य है । इन स्थितियों में वह पुराने कथा रूपों से निश्चित रूप से भिन्न है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने अपने ग्रंथ "हिन्दी साहित्य " में लिखा है कि " आधुनिक ~~कुल~~ युग के आरंभ होने के पहले तक हमारे देश में नाना श्रेणी के उपन्यास-जातीय कथा-काव्य वर्तमान थे । उनमें पौराणिक आख्यान भी हैं, नैतिकता और लोक-चातुरी सिखाने वाली कहानियाँ भी हैं और धर्म और भक्ति को स्पष्ट करने वाली कथाएं भी लिखी गई हैं । " / हिन्दी साहित्य , पृ. 414 / परंतु प्रवर्तमान "उपन्यास-विधा " को देख जाने से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि इधर उसमें एक अंतरंग और गुणात्मक परिवर्तन आया है , जो उसे उसके पुराने कथा-रूप से नितान्त अलग ले जाता है । स्वयं द्विवेदीजी ने कहा है कि " उसमें / उपन्यास में / दुनिया जैसी है वैसी ही चित्रित करने का प्रयास मिलता है । " पुराना कथा-रूप तो आदर्शवादी , बोधप्रधान , मनोरंजनात्मक तथा केवल कथालक्षी था ; जब कि उपन्यास यथार्थवादी ,जीवन-दृष्टि संपन्न, मानवीय-चेतना का संवाहक तथा केवल कथालक्षी नहीं है । " नोवेल इज़ समथिंग ग्रेटर धेन स्टोरी " । और इसी बिन्दु पर वह अपने पुराने कथा-रूप से पृथक जा पड़ता है ।

आधुनिक काल में कथा-साहित्य के इस विशिष्ट प्रकार — उपन्यास ने साहित्य में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है । उसकी लोकप्रियता भी क्रमशः बढ़ रही है । कथा के इस नये अभ्युदय का वृतान्त बड़ा ही रोचक है और वह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जीवन की परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही साहित्य-गत अभिव्यक्ति की विधाओं में भी परिवर्तन लक्षित होता है । यूरोपीय पुनर्जागरण तथा औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप समूचे जीवन का ढांचा ही बदल गया । वह पहले के किसी भी युग की अपेक्षा अधिक पेचीदा तथा जटिल बन गया । जीवन की इस बढ़ी हुई जटिलता के संवाहक के रूप में उपन्यास आया । कुछ वर्षों पहले तक कथा-साहित्य मात्र मनोविनोद की वस्तुथी । उसका पठन-पाठन समय का दुरूपयोग समझा जाता था और बड़े- बूढ़ों की आंखों से बचकर उसे पढ़ा जाता था । डा० श्रीकृष्णलाल ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा था :- " अर्द्ध-शिक्षितों की संपत्ति होने के कारण उपन्यास साहित्य में घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे । पिता अपने पुत्रों को , भाई अपने छोटे भाई और बहनों को उपन्यास पढ़ने से रोकते थे । साहित्यिक लेखक उपन्यास लिखना निन्दा की वस्तु समझते थे । " / आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास , पृ. 289 / परंतु हमारे देखते-देखते वही कथा अब उपन्यास का अपेक्षाकृत अधिक पुष्ट , विकसित एवं संजीदा रूप धारण करके साहित्य की एक सम्मानित विधा बन गई है । यह एक ऐसी कला है , जो मानव को उसकी संपूर्णता के साथ ग्रहण करते हुए उसकी अनुभूतियों तथा समस्याओं को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करती है । कदाचित इसीलिए राल्फ फाक्स महोदय ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है । वस्तुतः उपन्यास इस नये युग के नये मनुष्य की नयी वास्तविकताओं स्थापित करने में अन्य काव्य-रूपों की तुलना में विशेष सफल रहा है ।

इसमें वाल्टर स्काट , एच.जी. वेल्स , जेम्स जायस , एलेक्जान्डर ड्यूमा , बाल्ज़ाक, रोमांरोलां , टाल्सटोय , गोर्की , तुर्गनिव , कामू , काफ्का , ज्यां पाल सार्त्र , हेमिंग्वे , फाकनर जैसे विश्वविख्यात पाश्चात्य तत्वचिंतक एवं मनीषी साहित्यकार हुए हैं । भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करें तो प्रेमचन्द, जैनेन्द्र , अज्ञेय , यशपाल §हिन्दी § ; रवीन्द्रनाथ ठाकुर , शरदबाबू , ताराशंकर बन्दोपाध्याय , बिमल मित्र §बंगला § ; हरिनारायण आप्टे , वि.स. खांडेकर , जयंत दळवी § मराठी § ; कारन्थ , श्रीनिवासन §कन्नड§ गोवर्धनराम त्रिपाठी , पन्नालाल पटेल , कन्हैयालाल मुंशी §गुजराती§ ; फकीरमोहम्मद सेनापती §उड़िया§

जैसे महान चिंतक साहित्यकार इस विधा को प्राप्त हुए हैं। विश्व की श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियों पर प्रदत्त नोबल पुरस्कार भी अद्यावधि अधिकांशतः उपन्यासकारों को ही मिले हैं।

समाज और साहित्य परस्परावलंबित है, परंतु यह तथ्य उपन्यास पर सर्वाधिक रूप से लागू होता है। उपन्यास का जन्म ही समाज की जटिल संरचना के स्थापन हेतु हुआ है। अतः समाज, समाज के लोग, उनके प्रश्नप्रश्न, उनकी समस्याएं इन सबसे दो-चार होना ही उसका कार्य है। यह एक सुखद संयोग है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" {1878} आधुनिक युग की एक ज्वलंत समस्याको लेकर लिखा गया है - नारी-शिक्षा की समस्या। तबसे लेकर अभी तक ऐसे समस्यामूलक उपन्यासों की एक परंपरा-सी बनी हुई है।

प्रस्तुत प्रबंध में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में निरूपित मानव-जीवन की समस्याओं को आकलित करने का उपक्रम रखा गया है। दूसरे शब्दों में सन् 1947 से सन् 1980 तक के ग्रामभित्तीय उपन्यासों को इसमें अध्ययन का विषय बनाया गया है। वस्तुतः हमारे देश की स्वाधीनता एक बहुत बड़ा छलावा बनकर रह गई है। आज़ादी से पहले हमारे देश के नेताओं ने देश का जो नक्शा खींचा था, आज़ादी के बाद बरअक्स इसके विपरीत हुआ है। आज़ादी केवल सत्ता का हस्तांतरण मात्र बनकर रह गई। राजनीतिक भ्रष्टता ने जीवन के तमाम क्षेत्रों को लील लिया है। शोषक और शोषित वर्गों में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। औद्योगिकरण तथा नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण-जीवन के मूल्यों को बुरी तरह से आक्रान्त करना शुरू कर दिया है। ग्रामीण जीवन के इस नग्न यथार्थ को "मैला आंचल", गंगामैया", "सत्ती मैया का चौरा", "धरती धन न अपना"; नदी फिर बह चली", "जल टूटता हुआ", "अलग अलग वैतरणी", "कब तक पुकारूं ?" "आधागांव" जैसे अनेक उपन्यासों में उकेरा गया है। डा० त्रिभुवनसिंह, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० रामदरश मिश्र, भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, डा० अतुलवीर अरोड़ा, डा० कुंवरपालसिंह, डा० रमेश कुंतल मेघ, डा० शिवकुमार मिश्रा प्रभृति कई उपन्यास-साहित्य के आलोचकों ने उक्त उपन्यासों के नाना पक्षों तथा आयामों को विश्लेषित

किया है । प्रस्तुत अध्ययन अपनी पूर्व-परंपरा में यथाशक्ति योगदान देने का एक नम्र प्रयास है । नगरीय परिवेश के उपन्यासों को लेकर इसी प्रकार का एक अध्ययन इसी विश्वविद्यालय से हो चुका है । प्रस्तुत अध्ययन में उसके दूसरे आयाम को चिन्हित किया गया है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रथम अध्याय में उपन्यास-विधा की संक्षिप्त चर्चा करते हुए उसकी यथार्थधर्मिता को लक्षित किया गया है । इसी अध्याय के अंतर्गत उपन्यास और समाज के पारस्परिक संबंधों को निरूपित करते हुए समस्यामूलक उपन्यासों की परंपरा को निर्दिष्ट करने का यत्न हुआ है । प्रेमचन्द-पूर्व युग , प्रेमचन्दयुग तथा प्रेमचन्दोत्तर के समस्यामूलक उपन्यासों का संक्षिप्त ब्यौरा दिया गया है ।समस्याएं युग-सापेक्ष होती हैं , अतः आलोच्यकाल § सन्1947 से 1980§ की युग-चेतना के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि आयामों को उदघाटित करने का यत्न भी यहां किया गया है ।

औद्योगिक क्रान्ति तथा नगरीकरण की समस्या ने ग्रामीण-जीवन को निश्चित रूप से प्रभावित किया है । ग्रामीण-जीवन पर शहरी जीवन-मूल्यों के बढ़ते दबावों को भी यहां समेकित किया गया है । मनुष्य का स्वार्थी और स्वकेन्द्रित होते जाना , पारिवारिक विघटन , उत्सवों तथा पर्वों का रंगहीन होते जाना , पढ़े-लिखे लोगों का अजनबी-सा व्यवहार प्रभृति तथ्यों को रेखांकित किया गया है ।

दूसरे अध्याय में सन् 1947 से 1980 तक के ग्रामभित्तीय उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा । प्रारंभ में ग्रामभित्तीय उपन्यासों में निरूपित समस्याओं के स्वरूप के संदंध में एक संक्षिप्त विवरण दिया जाएगा । तत्पश्चात् " मैला आंचल " , " गंगा मैया " , " सत्तीमैया का चौरा " बलचनमा , " वरुण के बेटे " , " परती :परिकथा " , " कब तक पुकारूं ? " " आधागांव " , " अलग अलग वैतरणी " , " राग दरबारी " , " जल टूटता हुआ " , " कभी न छोड़ें खेत " , " " धरती धन न अपना " , " नदी फिर बह चली " , " काला जल " , " इमरतिया " , " सूखता हुआ तालाब " , "सफेद मेमने " , "कांचघर " , " अंधेरी गली का मकान " , उभरते प्रश्न " , " उल्का ," एक टुकड़ा इतिहास" , "पानी" , " नाकवाले "

"पारो" , " बहती रहें नदियां" , "युग बदल गया", "प्रवंचना" , " हौलदार", "एक मूठ सरसों" , " चौथी मुट्ठी" , "नागवल्लरी" प्रभृति लगभग 30-40 उपन्यासों की वस्तु-चेतना को ग्रामीण-परिवेश के संदर्भ में विश्लेषित किया ~~क~~ गया है । इन उपन्यासों में जमींदारों के अत्याचार , सरकारी-तंत्र द्वारा गरीबों और अनपढ़ों का शोषण , सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक भ्रष्टाचार , स्त्री-पुरुषों के अनैतिक यौन-संबंध ,छोटी जातियों पर हो रहे अत्याचार , जातिवाद, वर्गवादी चेतना का अभाव जैसी जो समस्याएं हैं उनको संक्षिप में संकेतित किया गया है ।

उपन्यासों में निरूपित समस्याओं को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया गया है :- /1/ सामाजिक समस्याएं , /2/ आर्थिक समस्याएं , /3/ राजनीतिक समस्याएं तथा /4/ सांस्कृतिक, शैक्षिक , मनोवैज्ञानिक, धार्मिक और इतर समस्याएं । तीसरे अध्याय में सामाजिक समस्याओं का समुचित आकलन किया गया है । प्रारंभ में सामाजिक समस्याओं के स्वरूप की चर्चा की गई है । तदुपरान्त संयुक्त परिवार में विघटन की प्रक्रिया ,टूटते बिखरते गांव , टूटते हुए जीवन-मूल्य, जातिप्रथा की समस्या , समाज का खण्डात्मक विभाजन , संस्तरण , छोटी जातियों के सामाजिक सहवास तथा सहभोजों पर प्रतिबंध , उनकी नागरिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएं , व्यवसाय के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव , उनके साथ विवाह-संबंधी प्रतिबंध , निम्न जातियों का सामाजिक एवं नैतिक शोषण , शहरी प्रभावों का दबाव , समाज में नारी की स्थिति , ग्रामीण समाज में बच्चों की स्थिति , वृद्ध विवाह की समस्या , हिन्दू-मुस्लिम की समस्या , वेश्या-समस्या , प्रभृति शीर्षकों के अंतर्गत सामाजिक समस्याओं के विविध आयामों को विश्लेषित किया गया है । अध्याय के अन्त में निष्कर्ष दिए गए हैं ।

मानव-जीवन की अनेक समस्याओं के मूल में "अर्थ" का प्राधान्य देखा जा सकता है । कहा भी गया है - " सर्वे गुणाः कांचनं आश्रयन्ते " । मनुष्य के बहुत-से कार्यकलापों की वल्गा अर्थ-चेतना के हाथों में है । अतः चौथे अध्याय में मानव-जीवन की आर्थिक समस्याओं का विवेचन किया गया है । दरिद्रता की समस्या , गरीबी की विभावना तथा उसके कारण , जमींदारी प्रथा , कृषि का औद्योगीकरण , चकबन्दी , महाजनों द्वारा शोषण , औद्योगीकरण , ~~बे~~ बेकारी की

समस्या , आवास की समस्या , उचित शिक्षा का अभाव , मद्यपान , वेश्यावृत्ति की समस्या , नवधनिक वर्ग , पुलिस और न्यायतंत्र की लूट-खसोट , धर्म और पूंजीवाद का गठबंधन , जैसे शीर्षकों के अंतर्गत आर्थिक समस्याओं के नाना रूपों को समाकलित किया गया है ।

वस्तुतः गांधीजी की स्वतंत्रता-विषयक जो परिकल्पना थी , उस पर हमारी स्वतंत्रता खरी नहीं उतरती है । गांधीजी के राष्ट्रव्यापी आंदोलन के पीछे केवल अंग्रेजों को इस देश से खदेड़ना ही एक मात्र उद्देश्य नहीं था , अपितु वे इस देश को समग्रतया -- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक , सांस्कृतिक , भाषिक सभी दृष्टियों से विकसित करना चाहते थे । परंतु स्वाधीनता के उपरांत हमारी राजनीति की दिशा ही बदल गई , बल्कि यह कहना ज्यादा उचित होगा कि राजनीति ही नीतिविहीन-दिशाहीन हो गई । इस राजनीतिक भ्रष्टता के कारण हमारे समाज में अनेक समस्याएं पैदा हुईं । पांचवे अध्याय में इन समस्याओं को लिया गया है । स्वाधीनता के उपरांत की भ्रष्ट-राजनीति, ग्रामीण तबकों की राजनीति में ऊंची जातियों का वर्चस्व , ग्रामीण नेतागिरी में ऊंची शिक्षा का अभाव , राजनीति और नौकरशाही का गठबंधन , मोहभंग की स्थिति , जंगलतंत्रम , सरकारी योजनाओं से प्रभु-वर्ग की हित साधना , राजनीति में ढगी व्यक्तियों का प्रवेश , चुनाव के हथकण्डे , पुलिस का रवैया , नवधनिक वर्ग, एक नया अजनबीपन , इत्यादि शीर्षकों के अंतर्गत राजनीतिक समस्याओं को देखा गया है ।

वस्तुतः कोई भी समस्या अपने आप में पूर्ण नहीं होती । दूसरे आयाम उसमें असंदिग्ध रूप से विद्यमान रहते ही हैं । सामाजिक , आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभृति समस्याओं के कारण अन्य प्रकार की समस्याएं -- सांस्कृतिक , शैक्षिक , मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक -- उद्भूत होती हैं । छठे अध्याय में इन्हीं सब समस्याओं को लिया गया है । पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्षों में नगरीकरण , औद्योगीकरण , भौतिकवादी चिंतन , पश्चिम का अंधानुकरण , फिल्म तथा वीडियो का प्रभाव , राजनीतिक मूल्यहीनता , शैक्षिक भ्रष्टता आदि के कारण ग्रामीण परिवेश में भी सांस्कृतिक संकट का संक्रमण बढ़ रहा है । अनैतिक यौन संबंध पहले से चले आ रहे

हैं , परंतु पहले जहाँ उसमें निबाहने की वृत्ति थी , उसके स्थान पर अब उसमें उत्तरदायित्वहीन विश्रृंखलता और स्वछंदता बढ़ रही है । पहले घर , परिवार तथा पट्टीदारी से परहेज बरता जाता था , परंतु अब मर्यादा की सारी दीवारें ढहती जा रही हैं । इस अध्याय में इस गहराते जाते सांस्कृतिक संकट के कतिपय मुद्दों को रेखांकित करने का प्रयास हुआ है ।

शिक्षा का क्षेत्र राजनीति से सर्वथा अछूता होना चाहिए , परंतु आजकल उसमें सबसे ज्यादा राजनीति चल रही है । शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है और इन शिक्षा-संस्था रूपी गायों को दुहने के लिए राजकारणियों ने उन्हें हथिया लिया है । शिक्षकों की नियुक्ति से लेकर हर छोटी-बड़ी चीज की खरीदी में उनकी "खायकी " निश्चित होती है । शिक्षा के क्षेत्र में आयेदिन जो प्रयोग होते हैं उसके कारण भी ग्रामीण शिक्षा-व्यवस्था को बड़ी क्षति हुई है । छठे अध्याय में इन समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है ।

ग्रामीण परिवेश में बौद्धिक जटिलता का समावेश कम होने के कारण बनिस्बत शहर के मनोवैज्ञानिक समस्याएं कम होती हैं , परंतु बिलकुल नहीं होती ऐसा तो नहीं कहा जा सकता । कई बार देखा गया है कि जो समस्या बाह्यतः सामाजिक , आर्थिक या अन्य प्रकार की प्रतीत होती है , सूक्ष्मता से देखने पर उसका उत्स किसी अनबूझ गुत्थी में दृष्टिगत होता है । अतः इस छठे अध्याय में ही जातिगत कुण्ठा , अर्थगत कुण्ठा , यौन विकृतियां -- ठण्डापन , नपुंसकता , हस्तमैथुन , समलैंगिकता , ~~[illegible]~~ पशुमैथुन , -- मेन्टल डिप्रेशन तथा मद्यपान आदि की कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है ।

धर्म को यदि उसके सही मानवतावादी परिप्रेक्ष्य से देखा जाय तो वह मानव-समस्याओं के निवारण का एक प्रमुख साधन हो सकता है । परंतु धर्म के संकीर्ण , सांप्रदायिक अतएव अधार्मिक अभिगम के कारण ही समस्याओं के समाधान के स्थान पर , समस्याओं में वृद्धि हो रही है । इस अध्याय में धर्म के कारण जो मानवीय संकट बढ़ रहे हैं , उन पर भी विचार किया गया है ।

अंतिम अध्याय उपसंहार का है जिसमें सन् 1947 से 1980 तक के ग्रामभित्तीय उपन्यासों में निरूपित मानव-जीवन की समस्याओं का समुचित मूल्यांकन करने का एक विम्र प्रयास किया गया है । अध्याय में उपन्यास साहित्य के महत्व को रेखांकित करते हुए उसके अध्ययन की अन्य दिशाओं के संकेत भी दिए गए हैं । इस प्रबंध में ग्रामभित्तीय उपन्यासों के संदर्भ में जो समस्याएं उठाई गई हैं तथा उनका विश्लेषण जिस तरह किया गया है , उससे यदि परावर्ती अध्ययन की कुछ दिशाएं निश्चित होतीं या खुलती हैं और ज्ञान के संचयन तथा संवाहन में कुछ भी योग मिलता है , तो मेरा प्रयास तथा तदजन्य परिश्रम सार्थकता को प्राप्त होगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

ज्ञान ही ज्ञान के रास्ते को खोजता है । मेरा यह लघु नम्र प्रयास साहित्याध्ययन और अनुशलन अनुशीलन तथा अनुसंधान के पथ को यदि यत्किंचित भी आगे बढ़ा सका तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा ।

इस प्रबंध में केवल ग्रामीण परिवेश के उपन्यासों को ही लिया है । इस संदर्भ में जिन समस्याओं को उठाया गया है उनको यथासंभव तथा यथा शक्ति-मति स्पष्ट करने का मेरा प्रयास रहा है । प्रस्तुत शोध-कार्य के लिए मैंने जिन ग्रन्थों , पत्रिकाओं , पत्रों का आधार लिया है , उनके विद्वान लेखकों के प्रति मैं कृतज्ञता अनुभव करता हूं ।

हंसा मेहता लायब्रेरी , सेन्ट्रल लायब्रेरी तथा छाणी की सार्वजनिक लायब्रेरी के ग्रन्थपालों का भी मैं अतीव आभारी हूं , जिन्होंने मुझे कुछ विशेष सुविधाएं प्रदान की जिसके कारण मैं अपना यह कार्य सुचारु रूप से कर सका ।

इस संदर्भ में मेरे घर-परिवार के लोग तथा मेरे मित्रों को मैं कैसे विस्मृत कर सकता हूं जिन्होंने मुझे निरंतर प्रोत्साहित कर प्रेरणा का पीयूष पिलाया है और जिनके कारण ही मैं आगे बढ़ने का साहस जुटा पाया हूं ।

इस शोध-प्रबंध को यह रूप प्रदान करने में मेरे निर्देशक डा० पारूकांत देसाई साहब का बहुत बड़ा योगदान है । अपनी अनेक व्यस्तताओं के बावजूद उन्होंने मुझे वांछित समय दिया है । उनके बहुमूल्य निर्देशों के अभाव में यह कार्य मेरे लिए संभव न होता । एक सच्चे गुरु की भांति उन्होंने मुझे पुत्र-सा स्नेह दिया है . उनकी इस शिष्य-वत्सलता के लिए मैं सदैव उनका ऋणी रहूंगा । अनेक बार

उन्होंने मुझे डांटा भी है , परंतु उनकी वह डांट मेरे लिए औषधि सिद्ध हुई है ।

हिन्दी विभाग के ~~प्राध्यापक~~ प्राध्यापक डा० आर. एन. तलाटी साहब का भी मैं विशेष ऋणी हूं ,जो बीच-बीच में मुझे टोकते-पूछते और प्रेरित करते रहे हैं । उनकी कृपा मुझ पर हमेशा बनी रही है । उनकी निःस्वार्थ शिष्य-वत्सलता का मैं सदा से कायल हूं और रहूंगा ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० आर. डी. पाठक साहब का भी मैं अत्यंत आभारी हूं , जो मुझे निरंतर प्रोत्साहित करते रहे हैं ।

भूतपूर्व अध्यक्ष तथा प्रोफेसर डा० मदनगोपाल गुप्त , सरदार पटेल यूनिवर्सिटी के हिन्दी के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष डा० शिवकुमार मिश्र , डा० गंगाधर मधुकर तथा डा० शिवतोष दास आदि महानुभावों के प्रति मैं विनीत और कृतज्ञ हूं जिन्होंने मेरे कंटकाकीर्ण मार्ग के कंटकों को अपने आशीर्वादों से दूर किया है ।

विभाग के अन्य प्राध्यापकों में डा० बी. डी. शर्मा साहब , डा० आर.जी. शर्मा साहब , डा० प्रेमलता बाफना , डा० अहिरे , डा० के. एम. शाह साहब आदि का भी मैं आभारी हूं , ~~जिन्होंने मुझे~~ जिन्होंने मुझे अपने इस कार्य में प्रोत्साहन दिया है ।

अन्ततः यह शोध-प्रबंध विद्वानों के सामने प्रस्तुत है । अपनी सीमाओं मर्यादाओं , शक्तियों-अशक्तियों से मैं परिचित हूं । क्षतियों और त्रुटियों का अस्वीकार नहीं है । यदि इस संदर्भ में विद्वज्जनों की ओर से कोई सुझाव या दिशा-निर्देश मिलेंगे तो उनसे अपने शोधकार्य में परिहार के लिए प्रतिश्रुत हूं । सरस्वती के प्रोज्ज्वल प्रवाह में यह मेरा भी एक लघु-दीप है ।

अनुसंधित्सु ,

R. B. Bhatt

(राजेन्द्र भट्ट)

30 मई , 1992

मु. पो. छापी , जि० बड़ौदा